International Journal of Sanskrit Research 2016; 2(2): 72-75

International Journal of Sanskrit Research

अनन्ता

ISSN: 2394-7519
IJSR 2016; 2(2): 72-75
© 2016 IJSR
www.anantaajournal.com
Received: 23-02-2016
Accepted: 24-03-2016

डॉ. माधवी शर्मा
डी. बी. (पी. जी.) महाविद्यालय, खेरली (अलवर)

Correspondence
डॉ. माधवी शर्मा
डी. बी. (पी. जी.) महाविद्यालय, खेरली (अलवर)

मृच्छकटिकम एक रूपक विश्लेषण

डॉ. माधवी शर्मा

प्रस्तावना

मृच्छकटिककार शूद्रक एक सफल नाटककार होने के साथ ही कुशल कवि भी हैं। उन्होंने प्रयत्न किया है कि भी नाटकीय गुण मृच्छकटिक में समाविष्ट हों, साथ ही कवित्व की भी सुन्दर झॉकी मिले। उनकी प्रसादगुणयुक्त पद–रचना में सजीवता और शक्तिमत्ता ला देती हैं। जिससे अभिभूत होकर कपिलदेव द्विवेदी आचार्य करते हैः–

काव्यसौन्दर्यसश्रीको नाट्य प्यप्रतिमप्रभः ।
शूद्रको भासते नित्यं सन्मृच्छकटिकाकरः।।

'मृच्छकटिकम्' भासरचित नाटक 'चारूदत्तं' पर आधारित है। किन्तू मृच्छकटिक के केवल एक भाग (चारूदत्त और वसन्तसेना का प्रेम) पर ही यह प्रभाव दृष्टिगोचर होता है, जबकि इसके दुसरे भाग में वर्णित राजनीतिक क्रिया–कलाप कवि की आपनी सम्पत्ति है। मृच्छकटिक में सात प्रकार की प्राकृत का प्रयोग होने से और कालिदास द्वारा उल्लिखित नाटककारों में शूद्रक का नाम न होने से यह स्पष्ट होता है कि मृच्छकटिक की रचना कालिदास और भास में बहुत काल पश्चात् हूई ।

'मृच्छकटिकम्' में जिन परिस्थितियों का चित्रण हुआ है, भारत में वे स्थितियां सम्भवतः तब उत्पन्न हुई थी, जब उज्जयिनी मे गुप्त साम्राज्य का अस्तित्व समाप्तप्राय था और हूणों के आक्रमण से तथा छोटे–छोटे राज्यों में पारस्परिक द्वेष भावना बढ जाने के कारण देश में आतंक, अव्यवस्था, अराजकता एवं स्वच्छन्दता जैसी राष्ट्र विरोधी प्रवृत्तियों की तेजी से वृद्वि हो रही थी। मृच्छकटिक का यह वर्णन दण्डी के 'दयाकुमारचरितम्' से मेल खाता हुआ लगता है।

उपर्युक्त वर्ण्य विषयों का प्रस्तुतीकरण मृच्छकटिक में इस प्रकार हुआ है कि संस्कृत नाटकों में केवल मृच्छकटिक को ही सार्वभौमिक कहलाने के श्रेय मिल सका। विश्व में सर्वत्र इसके पात्र, तत्सम परिस्थितियां और समस्याएं तथा कार्य–व्यापार सार्वकालिक रूप से व्याप्त हैं। इसमें किसी भी प्रकार के पूर्वाग्रह का

पूर्णतया अभाव है। देनन्दिन व्यवहार में घटित होने वाली घटनाओं का वास्तविक चित्रण है, अतएव यह नाटक सार्वभौम एवं लोकप्रिय हुआ हैं।

मृच्छकटिक की सार्वभौमिकता का सर्वप्रमुख कारण यह है कि, प्रायः संस्कृत नाटककार उच्च श्रेणी के पात्रों के चित्रण में अपनी भारती को चरितार्थ मानते रहे है, परन्तु शूद्रक ने इस परम्परा का परित्याग कर एक नवीन पंथ का ही अविष्कार किया है। उनके पात्र सामान्य जन की भॉति सडकों और गलियों में चलने–फिरने वाले मनुष्य हैं, जिनके कार्य–व्यापार को समझने के लिए कल्पना की उडान नही भरनी पडती है। जैसा कि डॉ0 बलदेव उपाध्याय कहते हैं– मृच्छकटिक की शास्त्रीय संज्ञा 'संकीर्ण प्रकरण' की है क्योकि इसमें लुच्चे–लबरों, चोर–जुआरों, वेश्या–विटों का आकर्षक वायुमण्डल है, जहॉ धौल–धुपाड़ों की चैकडी सदा अपना रंग दिखाया करती है। ''

मृच्छकटिकम्' मे मद, मूर्खता तथा अभिमान की प्रतिमा, धृष्टता का आगार, अस्तव्यस्तभाषी, राजा पालक का साला शकार मानवीय बुद्वि में कितना कुशाग्र है, यह तो उसके इस कथन से ही स्पष्ट हो जाता है–

चाणक्येन यथा सीता मारिता भारते युगे।
एवं त्वां मोटयिष्यामि जटायुरिव द्रौपदीम् ।।

तब भी जब न्यायाधीश उसका व्यवहार (मुकदमा) सुनना अस्वीकार कर देते हैं तो वह अपने बहनोई राजा पालक से कहकर उसे निकलवा देने की धमकी देता है। वह वसन्तसेना से जबरन

प्रणय–सम्बन्ध स्थापित करना चाहता है और असफल होने पर उसका गला घोंट देता है, जिसका आरोप विट,चेट तथा अन्नतः चारूदत्त पर लगा देता है। वस्त्तः ऐसे हठी और कुकर्मी व्यक्ति सदैव विद्यमान रहेते हैं जो घृणित कार्य करने में भी पीछे नही हटते है।

शर्विलक जैसा नवयुवक अपनी जीविका चलाने के लिए नौकरी करने के स्थान पर चैर्यकर्म को श्रेष्ठ मानता हैं– 'स्वाधीना वचनीयतापि हि वरं बद्वो न सेवांजलिः।' लगभग ऐसी ही भावना होती है अनुचित कृत्य करने वाले उच्च–कुलीन पथभ्रष्ट युवकों की।

द्यतक्रीडा समाज के लिए सदैव अभिशाप रही है, जिसमें व्यक्ति एक बार फंसता है तो फंसता ही चला जाता है। जैसे संवाहक 'मालिष करने की कला' छोडकर जुआ खेलने में आसक्त हो जाता है। उसके पास कौडी मात्र नही रहती और वह जुए में दस स्वर्णमुद्राएं हार जाता है और द्यतगृह से भाग निकलता है, द्यताध्यक्ष उसका पीछा करता है, मारता है और अपने प्राणों की रक्षा के लिए उसे एक वेश्या का कृपापात्र बनना पड़ता है।

उपर्युक्त मध्यम और अधम पात्रों के चित्रण के साथ ही मृच्छकटिक में इस परम्परा का परित्याग किया गया है कि केवल राजा, ब्राहमण या उच्चकुल से सम्बद्व व्यक्ति ही नायक–नायिका हो सकते हैं। इसका नायक चारूदत्त निर्धन है और नायिका वसन्तसेना गणिका है। अर्थात् मनुष्य का महत्त्व उसके कर्म के आधार पर ऑका गया है, न कि जन्म के आधार पर। चारूदत्त स्वयं ब्राहमणकुलोत्पन्न है, परन्तु उसका पैतृक व्यवसाय वणिक् का है। शर्विलक चतुर्वेदी ब्राहमण का पुत्र है, किन्तु चैर्यशास्त्र में निष्णात हो उसी को अपनी आजीविका बना लेता है। वसन्तसेना गणिका है, किन्तु उसे उसके सुसंस्कृत आचरण के कारण महनीय माना गया है।

मृच्छकटिक एक प्रगतिवादी एवं समाजवादी नाटक है। इसमे शोषित, दलित एवं उपेक्षित वर्ग का सहानुभूतिपूर्ण चित्रण है। उन्हें राजा तथा अन्य पदों पर प्रतिष्ठित दिखाया गया है। गोपबालक आर्यक राजा पालक को मारकार राजा बनता है। शूद्र वीरक (नायिका) और चन्दनक चर्मकार) सेनापति है। इसमे साथ ही इसमें गणिका का कुलवधू बनना, गणिकाओं का ब्राहमणों से विवाह इत्यादि भी मान्य है। अतएव समाजवादी एवं साम्यवादी विचारों में भी सफल होकर इस नाटक ने अपनी सार्वभौमिकता की पुष्टि की है।

यह नाटक इस दृष्टि से भी सार्वभौमिक है कि इसमे पात्रों की अति आदर्शवादिता के स्थान पर प्रत्येक पात्र के गुण और दोष का नीर–क्षीर–विवेचन किया गया है। चारूदत्त विवाहित पत्नी के होते हुए भी वसन्तसेना पर आसक्त है, वह न्यायालय में असत्य बोलता है। वसन्तसेना की वेश्यावृत्ति पर घोर कटाक्ष के साथ ही उसकी उदारता की प्रशंसा भी की गई है। शर्विलक चैर्यकर्म करता है किन्तु जब उसे पता चलता है कि उसका मित्र संकट में है तो वह तुरन्त उसकी सहायता करने के लिए जाता है।

'मृच्छकटिकम्' में इस सार्वकालिक सत्य का भी निरूपण किया गया है कि 'सर्वे गुणाः कांचनमाश्रयन्तें। चारूदत्त जैसे आचारवान् और धीर पुरूष पर शकार जैसा कुत्सित व्यक्ति भी अभियोग लगाने में इसलिए सफल हो जाता है कि क्योंकि चारूदत्त निर्धन है। संवाह, धन का अभाव होने के कारण प्राणों की रक्षा के लिए भी जगह–जगह भटकता है। चारूदत्त का पुर रोहसेन उन्मुक्त होकर बालसुलभ क्रीड़ा नही कर पाता है क्योकि उसके पास खेलने के लिए सौने की गाड़ी नही है।

आख्यान तथा वातावरण की इस यथार्थवादिता और नैसर्गिकता के कारण ही मृच्छकटिक पाश्चात्य आलोचकों की विपुल प्रशंसा का भाजन बन सका है। ' मृच्छकटिकम्' के अमेरिकन भाषान्तरकार डा0 राइडर ने ठीक ही कहा कि, ''इस नाटक के पात्र सार्वभौम (कॉस्मोपॉलिटन) हैं, अर्थात् इस विश्व के किसी भी देश या प्रान्त में उनके समान पात्र आज भी चलते–फिरते नजर आते हैं। इसके सार्वभौम आकर्षण का यही रहस्य है।'' इसी कारण पाश्चात्य देशों में भी इस नाटक का मंचन सदा सफल हो पाया है। इसमें पौरस्त्य चाकचिक्य की झॉकी का अभाव कभी भी इन्हे दूरदेशस्थ पात्रों का आभास भी नही प्रदान करता है। डा0 कीथ भले ही इन्हे पूरे 'भारतीय' होने की राय दें, परन्तु पात्रों के चरित्र में कुछ ऐसा जादू है कि वह दर्शकों के सिर चढकर बोलने लगता है। आज भी माथुरक जैसे सभिक् तथा उसके सहयोगियों का दर्शन कलकत्ता तथा बम्बई की गलियों में ही नही होता प्रत्युत लण्डन के 'ईस्ट एण्ड' में भी वे घूमते–घामते, धौले–धप्पड जमाते नजर आते हैं, जहॉ जुआरियों का अड्डा (गैम्बलिंग डेन) आज भी पुलिस की नजर बचाकर दिन–दहाडे चला करता है।

इस प्रकार डॉ0 भोलाशंकर व्यास के शब्दों मे, यह स्पष्ट हो जाता है कि, ''मृच्छकटिक अपने ढंग का अकेला नाटक है, जिसमें एक साथ प्रणयकथात्मक प्रकरण, धूर्तसकुल भाण तथा राजनीतिक नाटक का वातावरण दिखाई देता है। यही अकेला ऐसा नाटक है जो उस काल के मध्यम वर्ग की सामाजिक स्थिति को पूर्णतः प्रतिबिम्बित करता है।'' वर्तमान में भी चारों और दृष्टिपात् करने पर हमें मृच्छकटिक सद्ष पात्र और परीस्थितियां दृष्टिगोचर होती है, जिसमे उन्ततः मृच्छकटिकम्' की सार्वभौमिकता सिद्व होती है।

संस्कृत रंगो को हिन्दी मंच पर विखरने की लंबी परंपरा हमारे यह रही है। लेकिन शूदक या भास की 'मृच्छकटिकम्' ही वह नाटक है, जिसे शायद हिन्दी रंगमंच पर सबसे ज्यादा बार खेला गया है और शायद अलग–अलग नामों से भी हबीब तनवीर ने इसें 'मिट्टी की गाड़ी' के नाम से खेला, तो इप्टा के मुक्तिबोध समारोह में निर्देशक रामजीबाली के 'थियेटरवाला' ने कल इसे 'चारूदत्तम' के नाम से पेश किया। संजय उपाध्याय ने भी इसे अपने तरीके से खेला है। वसंतसेना और चारूदत्त की मूल कहानी भी जीवित रह गई, लेकिन 'मृच्छकटिकम्' कितना रह गया, कहा नही जा सकता । हर निर्देशक ने उसमें अपना नया रंग भरा, नया अर्थ दिया, उसे सामयिकता से जोड़ा । वास्तव में संस्कृत का यह रंग हमारे देश के हर प्रकार के रंगमंच पर बिखरा है।

प्रेम जीवन का मूल दर्शन है और 'मृच्छकटिकम्' इसी दर्शन पर विकसित हुआ है– और प्रेम का कोई रंग नही होता, हॉलाकि वह बदरंग भी नही हो सकता है।

इस प्रेम को न संस्कृत रंग के रूप में, न पारसी रंग के रूप में और न ही मैथिल या हिन्दी के रूप में उकेरा जा सकता है। यह मनुष्य की स्वाभाविक प्रवृत्ति है, चाहे वह राज प्रासाद में रहता हो या झोपडी में।

शूद्रक की खासियत यह है कि उसने 'मृच्छकटिकम्' के रूप में इस रंग को राजप्रसादों की चारदीवारी से मुक्त किया और उसे जनसाधरण के रंग में रंग दिया। इसमें शाकार की उपस्थिति राजा के साले के रूप में 'निरंकुश सत्ता के एक असंवैधानिक केन्द्र' (बकौल ऋषिकेश सुलभ) के प्रतीक के रूप में ही है, लेकिन मूल कथा तो एक गरीब ब्राहमण चारूदत्त और नृत्यांगना वसंतसेना के बीच के प्रेम–विकास का ही है। भास के इस नाटक में लोच और नाट्य अपने पूरे शबाब पर है। यहां बहुमत रंगदर्शक अपने आपको चारूदत्त की जगह रख सकते हैं। शायद इसी उर्वर कल्पनाशीलता ने इस नाटक में जिस प्रकृति–सौंदर्य का वर्णन किया है, उसको मंच पर साकार करने के लिए निर्देशक की कल्पनाशीलता कहीं बाधित नही होती।

लेकिन रामजीबाली ने अपनी कल्पनाशीलता का उपयोग करने के बजाए दिखे–दिखाये को फिर से दिखानें की कोशिश की है। उनकी प्रस्तुति कही से भी नया पाठ नही रचंती, नाटक का 'पुनर्सृजन' नही करती । 'मृच्छकटिकम्' का वैसा 'पुनर्सृजन', जैसा हबीब तनवीर व संजय उपाध्याय ने किया है। यही कारण है कि कलाकारों की मेहनत और अभिनय के बावजूद रंगदर्शक बोरियत महसूस करते हैं और मोबाइल से खेलते दिखे। रामजी बाली की प्रस्तुति रंग–विमर्श के क्षेत्र में कोई जमीन नही तोड पाती। यदि अपनी प्रस्तुति में वे कुछ आधुनिक संदर्भ जोड़ देते, यदि संगीत

प्रकाश में कुछ नया प्रयोग कर सकते, यदि मंच को कुछ सज्जा दे पाते, तो यह एक बेहतर प्रयोग हो सकता था। लेकिन फिर भी..... .....न से, कुछ होना बेहतर है।

लेकिन रंग दर्शकों की मांग है कि जो है, उससे बेहतर चाहिए। यही बेहतर प्रयोग योगेन्द्र चौबे ने खैरागढ़ संगीत महाविद्यालय के नाट्य विभाग के अपने छात्रों के साथ मिलकर किया है–– 'स्मृति मुक्तिबोध' के नाम से । 13 नवंबर को मुक्तिबोध का जन्मदिन भी था और यह उन्हें सही श्रद्वाजंलि भी थी। यह सही है कि मुक्तिबोध की कवितायें जितनी विचार–सघन हैं, अन्य किसी की कवितायें नही। आम पाठकों का इन कविताओं को समझना ही बहुत दुरूह कार्य है, उसें बिम्बों में उतारना तो और भी कठिन है। लेकिन मुक्तिबोध के जीवन–संदर्भो और उनकी कविताओं के साथ जोडकर जिस सामूहिक रचनात्मक रंगाभिव्यक्ति का प्रदर्शन हुआ, वह बहुत बेहतर था। ऐसे प्रदर्शन ही समाज के कचरे को साफ करने कें लिए 'मेहतर का काम कर सकते है।

विद्वानों ने काव्य के दो भेद किए हैः दृश्य काव्य तथा श्रव्य काव्य। दृश्यकाव्य को 'रूपक तथा उपरूपक दो भागों में बॉटा गया है। रूपक के पुनः दस भेद किए गए है, जिनमें से एक मुख्य भेद 'नाटक तथा एक प्रकारण भी है। सामान्यतः नाटक शब्द का प्रयोग समस्त दृश्यकाव्य के लिए किया जाता है या कह सकते हैं कि नाटक को दृश्य–काव्य का पर्याय मान लिया जाता है। 'काव्येषु नाटकं रम्यम कह कर संस्कृत साहित्य में नाटक की महत्ता प्रतिपादित की गई है। यह भी कहा जाता है कि नाटक पॉचवॉ वेद है जिसकी सृष्टि ब्राहमण ने की और भरतमुनि ने जिसे धरती पर फैलाया। प्रोफेसर मैसमूलर, पिशेल लेवी, मैक्डानल और कीथे जैसे पाश्चात्य विद्वानों ने यह स्वीकार किया है कि नाटक का प्रारंभ सबसे पहले भारतवर्ष में हुआ।

संस्कृत साहित्य मे कोमल अंग के रूप में नाटय–साहित्य की विशद परंपरा प्राप्त होती है। भास संस्कृत के पहले नाटककार माने जाते हैं। कालिदास, अश्वघोष, विशाखदत्त, भवभूति जैसे (प्राप्त नाटककारों की ही श्रेणी में 'मृच्छकटिक के रचियता शूद्रक का नाम आदर से लिया जाता है 'मृच्छकटिक उनकी बहुचर्चित कृति है जो अपनी रोचक कथावस्तु और घटना–क्रम के लिए विख्यात है। मृच्छकटिक संस्कृत नाटय–साहित्य की एक ऐसी रचना है, जो कलिपत कथानक के कारण 'प्रकरण कही जाती है। प्रकरण की अन्य विशेषता यह होती है कि उसका नायक राजा के स्थान पर अमात्य, विप्र या वणिक होता है।

मृच्छकटिक शूद्रक की एकमात्र प्राप्त रचना है। शूद्रक से पहले भास ने चारूदत्त या दरिद्र चारूदत्त नाम का नाटक लिखा था, जिसमें चार अंक थे। यह जानना कम आश्चर्यजनक नही है कि मृच्छकटिक के अंग्रेजी अनुवाद की नाटस प्रस्तुती 1924 में, न्यूयार्क में की गई। 1905 में (जस्मि सपजजसम बसंल बतंज) नाम से मृच्छकटिक का अनुवाद अर्थर रड्डर ने किया। 1984 में गिरीश कर्नाड ने उत्सव नाम से जिस हिन्दी फिल्म का निर्माण किया, वह इसी नाटक पर आधृत थी।

वस्तु–विन्यास

मृच्छकटिक की कहानी कलिपत है और यह घटनापूर्ण प्रकरण है। घटनाऍ सजीव और प्रभाव डालने वाली है। यहॉ दो प्रेम–कथाऍ हैंः चारूदत्त और वसन्तसेना की तथा शर्विलक और मदनिका की इसके साथ ही एक राजनीतिक कथा भी है : राजा पालक का पतन और आर्यक का राज्यारोहण। ये सभी कहानियॉ परस्पर सम्बध है। कथा में एक ऐसी गति और प्रवाह है, जो बॉधे रखता है, उत्सुकता जगाए रखता है। आगे क्यो होगाघ यह कौतुहल लगातार बना रखता है।

मृच्छकटिक की कहानी सामान्य जन की कहानी है। राजा है, पर मुख्य कथा राजा की नही है। मुख्य पात्र तो परिस्थितियों की मार से निरधन बना चारूदत्त है। उसके गुणों पर मोहित होने वाली नायिका भी कोई रानी नही, नगर की अपूर्व सुन्दरी गणिका है। जुए मे सब कुछ हारने वाला संवाहक भी समान्यजन का प्रतिनिधि है, धूर्त चारूदत्त की समर्पिता पत्नी है, शर्विलक और मदनिका भी समाज के साधारण वर्ग से संबंध रखते है। इस प्रकार मृच्छकटिक परम्परागत नाटकों से भिन्न है क्योकि यहॉ साधारण मनुष्य की कथा है। यहॉ धूर्त शकार, निस्वार्थ चारूदत्त, कुलवधू धूर्त, संवेदनशील वसन्तसेना, चोर शर्विलक, सादय मित्र विदूषक और राज्य के जुआरी–विविधतापूर्ण पात्र है प्रत्येक की अपनी पहचान औंर सत्ता है और इसी माध्यम से जीवन की वास्तविकता का साक्षात्कार किया जा सकता है । वसन्तसेना गणिका होने के बावजूद पैंसे का लोभ छोडकर निर्धन चारूदत्त से प्रेम करती है। ब्राहमण पुत्र शर्विलक प्रेम में पड कर चोर बनता है। संवाहक जुआरी से बौ (भिक्षु का चोला धारण करता है। यह पात्रगत विविधता इस नाटक की विशेषता है। नाटक के पात्र समाज के सभी वर्गो का प्रतिनिधित्तव जनजीवन के रीति–रिवाज, रहन–सहन, सुख, हर्ष–विषाद से कथा का ताना बाना बुना गया है। राजनीति की हलचल का कुछ परिचय भी नाटक के माध्यम से मिलता है।

नाटक की प्रासंगिकता

यह नाटक मुख्य रूप से प्रेम के पवित्र रूप को सामने लाता है। चारूदत्त के प्रति वसन्तसेना का प्रेत गंभीर और एकनिष्ठा है। चारूदत्त के मन का भाव भी उदात्त है। चारूदत्त की पत्नी का समर्पित भाव भी ह्रदय को छू लेता है। धूता के लिए 'सर्वश्रेष्ठ आभूषण चारूदत्त है, बहुमूल्य रत्नावली नही । किन्तू नाटक की यह सहज–संवेदनशील कथा जीवन के व्यावहारिक पक्ष लेखा–जोखा भी है। यह नाटक जीवन के इकहरेपन के स्थान पर संशिलष्टता को आत्मसात करके चलता है। मनुष्य का जीवन कई स्तरों पर गतिमान होता है। वहॉ भले–से–भला और बुरे–से–बुरा व्यक्ति मौजूद है। यह कहना उचित होगा कि जैसा शूद्रक के समय का समाज था, वैसा ही आज का समाज भी है। आज भी तो सब तरह के पात्र से पाला पडता है। न्यायपालिका का भ्रष्टाचार, उच्च वर्ग के सॉठ–गॉठ के बल पर काम निकालने की प्रवृत्ति, जुए की लत लगने पर सब कुछ हार जाना, निरीह जनों को सताना, उच्चकुल का होने पर भी चोरी जैंसे कामों में लगना। ये तमाम सत्य आज के जीवन में भी तो विधमान है। इस तरह का नाटक काल निरपेक्ष, स्थान निरपेक्ष सत्य का उदघाटन करता है। यहॉ जो घटित हो रहा है वह कही भी, कभी भी हो सकता है। यह यथार्थ चित्रण अपनी जगह है, किन्तू नाटक का संदेश कुछ और भी है।

नाटककार चोरी, झूठ, बेईमानी, धोखेबाजी, छल–कपट और अन्याय के खिलाफ सचाई, ईमानदारी सदाशयता का संघर्ष दिखाकर सदवृत्तियों की जीत भी दिखाता है, शील की रक्षा करता है और सदाचारी को भी बचाता है। यही नाटकीय प्रासंगिकता का चरम बिन्दू है। जब चारूदत्त बंधस्थल पर पहुॅचकर मृत्यु के मुख में जाने ही वाला था, उसके जीवन में सब कुछ बिगडता मालूम होता है, तब एकाएक सब सॅवर जाता है। नाटकीय प्रसंग में ऐसा दिखाना अच्छाई में विश्वास बनाए रखना है, आशा और भरोसे की ज्योति जलाए रखना है। यही नाटक का संदेश और प्रासंगकिता है। इसलिए मृच्छकटिक सामाजिक चिंताओं से जुड़ी हुई एक प्रगतिशील कृति के रूप में आज भी अपना महत्तव बनाए हुए है। 'कर भला होगा भला जैसा स्वर नाटक की संरचना में गुॅथा हुआ है। चारूदत्त अपने हित की परवाह न करते हुए सदैव उसका हित करता रहता है। जब वह परेशानी से घिरता है तो सह्रदय वह अन्तर्मन रो उठता है। किन्तू अंत में जो प्रापित चारूदत्त को होती है, सचमुच उसका अधिकारी है, यह संतोष का भाव सादय के अन्तःकरण को निर्मल कर देता है। ।सस प्रेमसस जींस मदक्मसस।। कहावत चरितार्थ करता हुआ नाटककार सत्कार्यो के प्रति मानव–मात्र को न केवल प्रेरित करता है बल्कि उसकी निष्ठा बनाऐ रखता है।

नाटक की प्रासंगिकता रूढियों के त्याग में भी है। प्रचलित परिवाटी को न अपनाकर यह अप्रत्याशित रूप से रूढि तोडता हुआ दिखाई

देता है। उदाहरण के लिए गणिका का ब्राहमण से विवाह, निम्न वर्ग से सेनापति का चयन नाटककार की इसी दृष्टि को दर्शाते है। मध्यमवर्ग के आर्यक को राजा बनते दिखाना भी इसी तरह का रूढ़ि त्याग है।

शुद्रक के समय का समाज

शुद्रक अपने समय के समाज को उसकी वास्तवकि छवियों के साथ साकार करते है। समाज में रहने वाले चारो वर्गो का सही चित्र देते है। समाज में नारी की क्या स्थिति है, निम्न वर्ग की क्या स्थिति है, शोषण और अन्याय कहॉ कैसे पनपता है, सबका सही अंकन करते है।

इस कृति मे जीवन के हर पक्ष की सच्चाई व्यक्त की गई है। आम आदमी के लिए यह कृति एक सबक की तरह है, यह व्यक्ति विशेष पर निर्भर करता है कि क्या सीख लेता है। उदाहरण के लिए शुद्रक जुए के दोनों पक्ष उजागर करते है, पहला यह कि जुए में जीतने वाले को तो जुआ बिना सिंहासन राज्य दे सकता है। दूसरा यह कि यदि वहा हारे तो सब नष्ट हो जाता है। यह सभी काल का और सभी समाज का दो टूक सत्य है, जिसे शुद्रक अभिव्यक्त करते है। कृति के नीतिपरक कथन भी इसकी प्रासंगिकता और सामाजिक–बोध का प्रमाण है, यथा जब वे कहते हैः साहसे श्री वसति और सर्व शून्यं दरिद्रस्य तो यह एक सार्वभौमिक सत्य की अभिव्यकित है, सदा सदा का सत्य है। साहसी का साहस ही उसका वैभव है और दरिद्र के लिए इस संसार मे हैं ही क्याध शायद कुछ भी नही, क्योकि उपभोग तो सम्पन्नता से ही संभव है। जीवन के उतार–चढ़ावों की यथार्थ व्यंजना के कारण मृच्छकटिक एक लोकप्रिय नाटक रहा है, देश में ही नही विदेश में भी । परस्पर विरोधी भावों को ठीक पकड पाने के कारण, अच्छाई और बुराई के भरपुर समावेश के कारण नाटकीय प्रभावक्षमता बढी है। यह जीवन का एकांगी चित्र नही देता, समग्रता का बोध देता है। मनुष्य कमजोरियों का पुतला है, पर अपने किए का बोध उसे सबल बनने कों प्रेरित भी करता रहता है। इस सत्य के प्रमाण कृति के विस्तार में मौजूद है। शर्विलक चोरी करता है पर उसकी 'अपराधिनी अंतरात्मा शंकित हो उठती है, मनुष्य का मान जन्म या जाति के कारण नही, उसके गुणों और कर्म के कारण है, यह भी इस प्रकरण का निहितार्थ है। 'कुलीन होने से कुछ नही होता'

सन्दर्भ ग्रन्थ

1. संस्कृत साहित्य का समीक्षात्मक इतिहास, डॉ0 कपिलदेव द्विवेदी, रामनारायण लाल विजय कुमार, इलाहाबाद, 2004 पृ0 सं0– 326
2. संस्कृत नटकालोचन, चुन्नीलाल शुक्ल, साहित्य भण्डार, मेरठ, 1972, पृ0 सं0–184
3. संस्कृत साहित्य का इतिहास, डॉ0 बलदेव उपाध्याय, शारदा निकेतन, वाराणसी, 1978, पृ0 सं0–522
4. मृच्छकटिकम्, तारिणीश झा, रामनारायणलाल बेनी प्रसाद, इलाहाबाद 1975 पृ0 सं0